



अध्याय-३२

गुरु और ईश्वर की खोज, उपवास
अमान्य, बाबा के सरकार।

इस अध्याय में हेमाडपंत ने दो विषयों का वर्णन किया है।

(१) किस प्रकार बाबा की अपने गुरु से भेंट हुई और उनके द्वारा ईश्वरदर्शन की प्राप्ति कैसे हुई। (२) श्रीमती गोखले, जो तीन दिन से उपवास कर रही थीं, को पूरनपोली का भोजन कैसे कराया।

प्रस्तावना

श्री हेमाडपंत वटवृक्ष का उदाहरण देकर इस गोचर संसार के स्वरूप का वर्णन करते हैं। गीता के अनुसार वटवृक्ष की जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे को चारों ओर फैली हुई हैं। 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखम्' (गीता पंद्रहवाँ अध्याय, श्लोक १)। इस वृक्ष के गुण, पोषक और अंकुर, इंद्रियों के भोग्य पदार्थ हैं। जड़ें जिनका कारणीभूत कर्म हैं, वे सृष्टि के मानवों की ओर फैली हुई हैं। इस वृक्ष की रचना बड़ी ही विचित्र है। न तो इसके आकार, उद्गम और अन्त का ही भान होता है और न ही इसके आधार का। इस कठोर जड़ वाले संसार रूपी वृक्ष को, नष्ट करने के हेतु किसी बाह्य मार्ग का अवलंबन करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि इस असार-संसार में आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो। इस पथ पर अग्रसर होने के लिए किसी योग्य दिग्दर्शक (गुरु) की नितांत आवश्यकता है। चाहे कोई कितना ही विद्वान् अथवा वेद और वेदांत में पारंगत क्यों न हो, वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता, जब तक कि उसकी सहायतार्थ कोई योग्य पथप्रदर्शक न मिल जाए, जिसके पदचिन्हों का अनुसरण करने से ही मार्ग में मिलने वाले गह्वरों, खंदकों तथा हिंसक प्राणियों के भय से मुक्त हुआ जा सकता है, और इस विधि से ही संसार-यात्रा

सुगम तथा कुशलतापूर्वक पूर्ण हो सकती है। इस विषय में बाबा का अनुभव, जो उन्होंने स्वयं बतलाया, वास्तव में आश्चर्यजनक है। यदि हम उसका ध्यानपूर्वक अनुसरण करें तो हमें निश्चय ही श्रद्धा, भक्ति और मुक्ति प्राप्त होगी।

अन्वेषण

“एक समय हम चार सहयोगी मिलकर धार्मिक एवं अन्य पुस्तकों का अध्ययन कर रहे थे। इस प्रकार प्रबुद्ध होकर हम लोग ब्रह्म के मूलस्वरूप पर विचार करने लगे। एक ने कहा कि, हमें स्वयं की ही जागृति करनी चाहिए, दूसरों पर निर्भर रहना हमें उचित नहीं है। इस पर दूसरे ने कहा कि, जिसने मनोनिग्रह कर लिया है, वह धन्य है, हमें अपने संकीर्ण विचारों व भावनाओं से मुक्त होना चाहिए, क्योंकि इस संसार में हमारे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तीसरे ने कहा कि, यह संसार सदैव परिवर्तनशील है। केवल निराकार ही शाश्वत है। अतः हमें सत्य और असत्य में विवेक करना चाहिए। तब चौथे (स्वयं बाबा) ने कहा कि **केवल पुस्तकीय ज्ञान से कोई लाभ नहीं। हमें तो अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए।** दृढ़ विश्वास और पूर्ण निष्ठापूर्वक हमें अपना तन, मन, धन और पंचप्राणादि सर्वव्यापक गुरुदेव को अर्पण कर देने चाहिए। गुरु भगवान् है, सबका पालनहार है।”

इस प्रकार वादविवाद के उपरान्त हम चारों सहयोगी वन में, ईश्वर की खोज पर निकले। हम चार विद्वान् बिना किसी से सहायता लिए केवल अपनी स्वतंत्र बुद्धि से ही ईश्वर की खोज करना चाहते थे। मार्ग में हमें एक बंजारा मिला, जिसने हम लोगों से पूछा कि, “हे सज्जनों! इतनी धूप में आप लोग किस ओर प्रस्थान कर रहे हैं?” प्रत्युत्तर में हम लोगों ने कहा कि, “वन की ओर!” उसने पुनः पूछा, “कृपया यह तो बतलाइये कि वन की ओर जाने का उद्देश्य क्या है?” हम लोगों ने उसे टालमटोल वाला उत्तर दे दिया। हम लोगों को निरुद्देश्य सघन भयानक जंगलों में भटकते देखकर उसे दया आ गई। तब उसने अति विनम्र होकर हम लोगों से निवेदन किया कि,

“आप अपनी गुप्त खोज का हेतु चाहे मुझे न बतलायें, किन्तु मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि मध्याह्न के प्रचण्ड मार्तण्ड की तीव्र किरणों की उष्णता से आप लोग अधिक कष्ट पा रहे हैं। कृपया यहाँ पर कुछ क्षण विश्राम कर जलपान कर लीजिए। आप लोगों को सुहृदय तथा नम्र होना चाहिए। बिना पथ-प्रदर्शक के इस अपरिचित भयानक वन में भटकते फिरने से कोई लाभ नहीं है। यदि आप लोगों की तीव्र इच्छा ऐसी ही है तो कृपया किसी योग्य पथ-प्रदर्शक को साथ ले लें।” उसकी विनम्र प्रार्थना पर ध्यान न देकर हम लोग आगे बढ़े। हम लोगों ने विचार किया कि हम स्वयं ही अपना लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ हैं, तब फिर हमें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। जंगल बहुत विशाल और पथहीन था। वृक्ष इतने ऊँचे और घने थे कि सूर्य की किरणों का भी वहाँ पहुँच सकना कठिन था। परिणाम यह हुआ कि हम मार्ग भूल गए और बहुत समय तक यहाँ-वहाँ भटकते रहे। भाग्यवश हम लोग उसी स्थान पर पुनः जा पहुँचे जहाँ से पहले प्रस्थान किया था। तब वही बंजारा हमें पुनः मिला और कहने लगा कि, “अपने चातुर्य पर विश्वास कर आप लोगों को पथ की विस्मृति हो गई है। प्रत्येक कार्य में चाहे वह बड़ा हो या छोटा, मार्ग-दर्शक आवश्यक है। ईश्वर-प्रेरणा के अभाव में सत्पुरुषों से भेंट होना संभव नहीं। भूखे रहकर कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए यदि कोई आग्रहपूर्वक भोजन के लिए आमंत्रित करे तो उसे अस्वीकार न करो। भोजन तो भगवान का प्रसाद है, उसे ठुकराना उचित नहीं। यदि कोई भोजन के लिए आग्रह करे तो उसे अपनी सफलता का प्रतीक जानो।” इतना कहकर उसने भोजन करने का पुनः अनुरोध किया। फिर भी हम लोगों ने उसके अनुरोध की उपेक्षा कर भोजन करना अस्वीकार कर दिया। उसके सरल और गूढ़ उपदेशों की ओर ध्यान दिए बिना ही मेरे तीन साथियों ने आगे प्रस्थान कर दिया। अब पाठक ही अनुमान करें कि वे लोग कितने अहंकारी थे। मैं क्षुधा और तृषा से अत्यंत व्याकुल था ही, बंजारे के अपूर्व प्रेम ने भी मुझे आकर्षित कर लिया। यद्यपि हम लोग अपने को अत्यंत विद्वान् समझते थे, परन्तु दया एवं कृपा किसे कहते हैं, उससे सर्वथा अनभिज्ञ ही थे।

बंजारा था तो एक शूद्र, अनपढ़ और गँवार, परन्तु उसके हृदय में महान् दया थी, जिसने बार-बार भोजन के लिए आग्रह किया। **जो दूसरों पर निःस्वार्थ प्रेम करते हैं, सचमुच में वे ही महान् हैं।** मैंने सोचा कि इसका आग्रह स्वीकार कर लेना ज्ञान-प्राप्ति के हेतु शुभ आवाहन है, और मैंने इसी कारण उसके दिये हुए रूखे-सूखे भोजन को आदर व प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

क्षुधा-निवारण होते ही क्या देखता हूँ कि गुरुदेव तुरंत ही समक्ष प्रगट हो गए और प्रश्न करने लगे कि, “ये सब क्या हो रहा था?” घटित घटना मैंने तुरंत ही उन्हें सुना दी। उन्होंने आश्वासन दिया कि, **“मैं तुम्हारे हृदय की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा, परन्तु जिसका विश्वास मुझ पर होगा, सफलता केवल उसी को प्राप्त होगी।** मेरे तीनों सहयोगी तो उनके वचनों पर अविश्वास कर वहाँ से चले गए। तब मैंने उन्हें आदरसहित प्रणाम किया और उनकी आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वे मुझे एक कुएँ के समीप ले गए और रस्सी से मेरे पैर बाँधकर मुझे कुएँ में उलटा लटका दिया। मेरा सिर नीचे और पैर ऊपर को थे। मेरा सिर जल से लगभग तीन फुट की ऊँचाई पर था, न मैं हाथों के द्वारा जल ही छू सकता था और न मुँह में ही उसके जा सकने की कोई सम्भावना थी। मुझे इस प्रकार उलटा लटका कर वे न जाने कहाँ चले गए। लगभग चार-पाँच घंटों के उपरांत वे लौटे और उन्होंने मुझे शीघ्र ही कुएँ से बाहर निकाला। फिर वे मुझसे पूछने लगे कि तुम्हें वहाँ कैसा अनुभव हो रहा था? मैंने कहा कि, “मैं परम आनन्द का अनुभव कर रहा था। मेरे समान मूर्ख प्राणी भला ऐसे आनंद का वर्णन कैसे कर सकता है।” मेरा उत्तर सुन कर मेरे गुरुदेव अत्यंत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे अपने हृदय से लगाकर मेरी सराहना की और मुझे अपने संग ले लिया। एक चिड़िया अपने बच्चों का जितनी सावधानी से लालन पालन करती है, उसी प्रकार उन्होंने मेरा भी पालन किया। उन्होंने मुझे अपनी शाला में स्थान दिया। कितनी सुन्दर थी वह शाला! वहाँ मुझे अपने माता-पिता की भी विस्मृति हो गई। मेरे समस्त अन्य आकर्षण दूर हो गए और मैंने सरलतापूर्वक बन्धनों से मुक्ति पाई। मुझे सदा ऐसा ही लगता था कि

उनके हृदय से ही चिपके रहकर उनकी ओर निहारा करूँ। यदि उनकी भव्य मूर्ति मेरी दृष्टि में न समाती तो मैं अपने को नेत्रहीन होना ही अधिक श्रेयस्कर समझता! ऐसी प्रिय थी वह शाला कि वहाँ पहुँचकर कोई भी कभी खाली हाथ नहीं लौटा। मेरी समस्त निधि, घर, सम्पत्ति, माता, पिता या क्या कहूँ, वे ही मेरे सर्वस्व थे। मेरी इन्द्रियाँ अपने कर्मों को छोड़कर मेरे नेत्रों में केन्द्रित हो गईं और मेरे नेत्र उन पर। मेरे लिये तो गुरु ऐसे हो चुके थे कि दिन-रात मैं उनके ही ध्यान में निमग्न रहता था। मुझे किसी भी बात की सुध न थी। इस प्रकार ध्यान और चिंतन करते हुये मेरा मन और बुद्धि स्थिर हो गई। मैं स्तब्ध हो गया और उन्हें मानसिक प्रणाम करने लगा। अन्य और भी आध्यात्मिक केन्द्र हैं, जहाँ एक भिन्न ही दृश्य देखने में आता है। साधक वहाँ ज्ञान प्राप्त करने को जाता है तथा द्रव्य और समय का अपव्यय करता है। कठोर परिश्रम भी करता है, परन्तु अन्त में उसे पश्चात्ताप ही हाथ लगता है। वहाँ गुरु अपने गुप्त ज्ञान-भंडार का अभिमान प्रदर्शित करते हैं और अपने को निष्कलंक बतलाते हैं। वे अपनी पवित्रता और शुद्धता का अभिनय तो करते हैं, परन्तु उनके अन्तःकरण में दया लेशमात्र भी नहीं होती है। वे उपदेश अधिक देते हैं और अपनी कीर्ति का स्वयं ही गुणगान करते हैं, परन्तु उनके शब्द हृदयवेधी नहीं होते, इसलिए साधकों को संतोष प्राप्त नहीं होता। जहाँ तक आत्म-दर्शन का प्रश्न है, वे उससे कोसों दूर होते हैं। इस प्रकार के केंद्र साधकों को उपयोगी कैसे सिद्ध हो सकते हैं और उनसे किसी उन्नति की आशा कोई कहाँ तक कर सकता है? जिन गुरु के श्री चरणों का मैंने अभी वर्णन किया है, वे भिन्न प्रकार के ही थे। केवल उनकी कृपा-दृष्टि से मुझे स्वतः ही अनुभूति प्राप्त हो गई तथा मुझे न कोई प्रयास और न ही कोई विशेष अध्ययन करना पड़ा। मुझे किसी भी वस्तु के खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ी, वरन् प्रत्येक वस्तु मुझे दिन के प्रकाश के समान उज्वल दिखाई देने लगी। केवल मेरे वे गुरु ही जानते हैं कि किस प्रकार उनके द्वारा कुँ में मुझे उलटा लटकाना मेरे लिए परमानंद का कारण सिद्ध हुआ।

उन चार सहयोगियों में से एक महान् कर्मकांडी था। किस प्रकार

कर्म करना और उससे अलिप्त रहना, यह उसे भली भाँति ज्ञात था। दूसरा ज्ञानी था, जो सदैव ज्ञान के अहंकार में चूर रहता था। तीसरा ईश्वर-भक्त था जो कि अनन्य भाव से भगवान् के शरणागत हो चुका था तथा उसे ज्ञात था कि ईश्वर ही कर्ता है। जब वे इस प्रकार विचार-विनियम कर रहे थे, तभी ईश्वर संबंधी प्रश्न उठ पड़ा तथा वे बिना किसी से सहायता प्राप्त किए, अपने स्वतंत्र ज्ञान पर निर्भर रहकर ईश्वर की खोज में निकल पड़े। श्री साई, जो विवेक और वैराग्य की प्रत्यक्ष मूर्ति थे, उन चारों लोगों में सम्मिलित थे। यहाँ कोई शंका कर सकता है कि जब साई स्वयं ही ब्रह्म के अवतार थे, तब वे उन लोगों के साथ क्यों सम्मिलित हुए और क्यों उन्होंने ऐसा आचरण किया। स्वयं अवतार होते हुए भी और यह दृढ़ धारणा कर कि अन्न ही ब्रह्म है, उन्होंने एक क्षुद्र बंजारे के भोजन को सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा बंजारे के भोजन के आग्रह की उपेक्षा करने और बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करने वालों की क्या दशा होती है, इसका उनके समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया। श्रुति (तैत्तिरीय उपनिषद्) का कथन है कि हमें माता, पिता तथा गुरु का आदरसहित पूजन कर धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। ये चित्त-शुद्धि के मार्ग हैं और **जब तक चित्त की शुद्धि नहीं होती, तब तक आत्मानुभूति की आशा व्यर्थ है।** आत्मा इंद्रियों, मन और बुद्धि के परे है। इस विषय में ज्ञान और तर्क हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते, केवल गुरु की कृपा से ही सब कुछ सम्भव है। धर्म, अर्थ, और काम की प्राप्ति अपने प्रयत्न से हो सकती है, परन्तु **मोक्ष की प्राप्ति तो केवल गुरुकृपा से ही सम्भव है।** श्री साई के दरबार में तरह-तरह के लोगों का दर्शन होता था। देखो, ज्योतिषी लोग आ रहे हैं और भविष्य का बखान कर रहे हैं। दूसरी ओर राजकुमार, श्रीमान्, सम्पन्न और निर्धन, संन्यासी, योगी और गवैये दर्शनार्थ चले आ रहे हैं। यहाँ तक कि एक अतिशूद्र भी दरबार में आता है और प्रणाम करने के पश्चात् कहता है कि, “साई ही मेरे माँ या बाप हैं, और वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मेरा छुटकारा कर देंगे।” और भी अनेकों - तमाशा करने वाले, कीर्तन करने वाले, अंधे, पंगु, नाथपन्थी, नर्तक व अन्य मनोरंजन करने वाले दरबार में आते थे, जहाँ

उनका उचित मान किया जाता था और इसी प्रकार उपयुक्त समय पर, वह बंजारा भी प्रकट हुआ और जो अभिनय उसे सौंपा गया था, उसने उसको पूर्ण किया।

हमारे विचार से कुँ में ४-५ घंटे उलटे लटके रहना - इसे सामान्य घटना नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई बिरला ही होगा, जो इस प्रकार इतने अधिक समय तक, रस्सी से लटकाये जाने पर कष्ट का अनुभव न कर परमानंद का अनुभव करे। इसके विपरीत उसे पीड़ा होने की ही संभावना अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि समाधि-अवस्था का ही यहाँ चित्रण किया गया है। आनंद दो प्रकार के होते हैं - प्रथम ऐन्द्रिक और द्वितीय आध्यात्मिक। ईश्वर ने हमारी इंद्रियों व तन मन की प्रवृत्तियों की रचना बाह्यमुखी की है और जब वे (इंद्रियाँ और मन) अपने विषयपदार्थों में संलग्न होती हैं, तब हमें इंद्रिय-चैतन्यता प्राप्त होती है, जिसके फलस्वरूप हमें सुख या दुःख का पृथक् या दोनों का सम्मिलित अनुभव होता है, न कि परमानंद का। जब इंद्रियों और मन को उनके विषय पदार्थों से हटाकर अंतर्मुख कर आत्मा पर केन्द्रित किया जाता है, तब हमें आध्यात्मिक बोध होता है और उस समय के आनंद का मुख से वर्णन नहीं किया जा सकता। “मैं परमानंद में था तथा उस समय का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ?” इन शब्दों से ध्वनित होता है कि गुरु ने उन्हें समाधि अवस्था में रखकर चंचल इंद्रियों और मनरूपी जल से दूर रखा।

उपवास और श्रीमती गोखले

बाबा ने स्वयं कभी उपवास नहीं किया, न ही उन्होंने दूसरों को करने दिया। उपवास करने वालों का मन कभी शांत नहीं रहता, तब उन्हें परमार्थ की प्राप्ति कैसे संभव है? प्रथम आत्मा की तृप्ति होना आवश्यक है। भूखे रहकर ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि शरीर में कुछ अन्न की ऊर्जा न हो तो हम कौन सी आँख से ईश्वर को देखेंगे, किस जिह्वा से उनकी महानता का वर्णन करेंगे और किन कानों से उसका श्रवण करेंगे। सारांश यह कि जब समस्त इंद्रियों को यथेष्ट खुराक व शांति मिलती है, तथा जब वे बलिष्ठ रहती हैं,

तब ही हम भक्ति और ईश्वर-प्राप्ति की अन्य साधनाएँ कर सकते हैं, इसलिए न तो हमें उपवास करना चाहिए और न ही अधिक भोजन। भोजन में संयम रखना शरीर और मन दोनों के लिए उत्तम है।

श्रीमती काशीबाई कानिटकर (श्री साईबाबा की एक भक्त) से परिचयपत्र लेकर श्रीमती गोखले, दादा केलकर के पास शिरडी आईं। वे यह दृढ़ निश्चय कर के आई थीं कि बाबा के श्री चरणों में बैठकर तीन दिन उपवास करूँगी। उनके शिरडी पहुँचने के एक दिन पूर्व ही बाबा ने दादा केलकर से कहा कि, “मैं शिमगा (होली) के दिनों में अपने बच्चों को भूखा नहीं देख सकता हूँ। यदि उन्हें भूखे रहना पड़ा तो मेरे यहाँ होने का लाभ ही क्या है?” दूसरे दिन जब वह महिला दादा केलकर के साथ मस्जिद में जाकर बाबा के चरण-कमलों के समीप बैठी तो तुरंत बाबा ने कहा, “उपवास की आवश्यकता ही क्या है? दादा भट्ट के घर जाकर पूरनपोली तैयार करो। अपने बच्चों को खिलाओ और स्वयं खाओ।” वे होली के दिन थे और इस समय श्रीमती केलकर मासिक धर्म से थीं। दादा भट्ट के घर में रसोई बनाने के लिए कोई न था और इसलिए बाबा की युक्ति बड़ी सामयिक थी। श्रीमती गोखले ने दादा भट्ट के घर जाकर भोजन तैयार किया और दूसरों को भोजन कराकर स्वयं भी खाया। कितनी सुंदर कथा है और कितनी सुंदर उसकी शिक्षा।

बाबा के सरकार

बाबा ने अपने बचपन की एक कहानी का इस प्रकार वर्णन किया -

जब मैं छोटा था, तब जीविका उपार्जनार्थ मैं बीडगाँव आया। वहाँ मुझे जरी का काम मिल गया और मैं पूर्ण लगन व उम्मीद से अपना काम करने लगा। मेरा काम देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरे साथ तीन लड़के और भी काम करते थे। पहले का काम ५० रुपये का, दूसरे का १०० रुपये का और तीसरे का १५० रुपये का हुआ। मेरा काम उन तीनों से दुगुना हो गया। मेरी निपुणता देखकर सेठ बहुत

ही प्रसन्न हुआ। वह मुझे अधिक चाहता था और मेरी प्रशंसा भी करता रहता था। उसने मुझे एक पूरी पोशाक प्रदान की, जिसमें सिर के लिए एक पगड़ी और शरीर के लिए एक शेला भी था। मेरे पास वह पोशाक वैसी ही रखी रही। मैंने सोचा कि जो कुछ मनुष्य-निर्मित है, वह नाशवान् और अपूर्ण है, परन्तु जो कुछ मेरे सरकार द्वारा प्राप्त होगा, वही अन्त तक रहेगा। किसी भी मनुष्य के उपहार की उससे समानता संभव नहीं है। मेरे सरकार कहते हैं “ले जाओ”। लोग मेरे पास आकर कहते हैं, “मुझे दो, मुझे दो।” परन्तु जो कुछ मैं कहता हूँ, उसके अर्थ पर कोई ध्यान देने का प्रयत्न नहीं करता। मेरे सरकार का खजाना (आध्यात्मिक भंडार) भरपूर है और वह बह रहा है। मैं तो कहता हूँ कि खोदकर गाड़ी में भरकर ले जाओ। जो सच्ची माँ का लाल होगा, उसे स्वयं ही भरना चाहिए। मेरे फकीर की कला, मेरे भगवान् की लीला और मेरे सरकार का बर्ताव सर्वथा अद्वितीय है। मेरा क्या, यह शरीर मिट्टी में मिलकर सारे भूमंडल में व्याप्त हो जाएगा तथा फिर यह अवसर कभी प्राप्त न होगा। मैं चाहे कहीं जाता हूँ या कहीं बैठता हूँ, परन्तु माया फिर भी मुझे कष्ट पहुँचाती है। इतना होने पर भी मैं अपने भक्तों के कल्याणार्थ सदैव उत्सुक ही रहता हूँ। जो कुछ भी कोई करता है, एक दिन उसका फल उसको अवश्य प्राप्त होगा और जो मेरे इन वचनों को याद रखेगा, उसे मौलिक आनन्द की प्राप्ति होगी।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥